श्रीमद् भगवदगीता – नौवाँ अध्याय

अनुक्रम

नौवें अध्याय का माहात्म्य 1
नौवाँ अध्यायः राजविद्याराजगुह्ययोग... 3

नौवें अध्याय का माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं – पार्वती अब मैं आदरपूर्वक नौवें अध्याय के माहात्म्य का वर्णन करूँगा, तुम स्थिर होकर सुनो। नर्मदा के तट पर माहिष्मती नाम की एक नगरी है। वहाँ माधव नाम के एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेद-वेदांगों के तत्वज्ञ और समय-समय पर आने वाले अतिथियों के प्रेमी थे। उन्होंने विद्या के द्वारा बहुत धन कमाकर एक महान यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया। उस यज्ञ में बलि देने के लिए एक बकरा मंगाया गया। जब उसके शरीर की पूजा हो गयी, तब सबको आश्चर्य में डालते हुए उस बकरे ने हँसकर उच्च स्वर से कहाः "ब्राह्मण ! इन बहुत से यज्ञों द्वारा क्या लाभ है? इनका फल तो नष्ट हो जाने वाला तथा ये जन्म, जरा और मृत्यु के भी कारण हैं। यह सब करने पर भी मेरी जो वर्तमान दशा है इसे देख लो।" बकरे के इस अत्यन्त कौतूहलजनक वचन को सुनकर यज्ञमण्डप में रहने वाले सभी लोग बहुत ही विस्मित हुए। तब वे यजमान ब्राह्मण हाथ जोड़ अपलक नेत्रों से देखते हुए बकरे को प्रणाम करके यज्ञ और आदर के साथ पूछने लगे।

ब्राह्मण बोलेः आप किस जाति के थे? आपका स्वभाव और आचरण कैसा था? तथा जिस कर्म से आपको बकरे की योनि प्राप्त हुई? यह सब मुझे बताइये।

बकरा बोलाः ब्राह्मण ! मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मणों के अत्यन्त निर्मल कुल में उत्पन्न हुआ था। समस्त यज्ञों का अनुष्ठान करने वाला और वेद-विद्या में प्रवीण था। एक दिन मेरी स्त्री ने भगवती दुर्गा की भक्ति से विनम्र होकर अपने बालक के रोग की शान्ति के लिए बलि देने के निमित्त मुझसे एक बकरा माँगा। तत्पश्चात् जब चण्डिका के मन्दिर में वह बकरा मारा जाने लगा, उस समय उसकी माता ने मुझे शाप दियाः "ओ ब्राह्मणों में नीच, पापी! तू मेरे बच्चे का वध करना चाहता है, इसलिए तू भी बकरे की योनि में जन्म लेगा।" द्विजश्रेष्ठ ! तब कालवश मृत्यु को प्राप्त होकर मैं बकरा हुआ। यद्यपि मैं पशु योनि में पड़ा हूँ, तो भी मुझे अपने पूर्वजन्मों का स्मरण बना हुआ है। ब्रह्मण ! यदि आपको सुनने की उत्कण्ठा हो तो मैं एक और भी आश्चर्य की बात बताता हूँ। कुरुक्षेत्र नामक एक नगर है, जो मोक्ष प्रदान करने वाला है। वहाँ चन्द्रशर्मा नामक एक सूर्यवंशी

राजा राज्य करते थे। एक समय जब सूर्यग्रहण लगा था, राजा ने बड़ी श्रद्धा के साथ कालपुरुष का दान करने की तैयारी की। उन्होंने वेद-वेदांगो के पारगामी एक विद्वान ब्राह्मण को बुलवाया और पुरोहित के साथ वे तीर्थ के पावन जल से स्नान करने को चले और दो वस्त्र धारण किये। फिर पवित्र और प्रसन्नचित्त होकर उन्होंने श्वेत चन्दन लगाया और बगल में खड़े हुए पुरोहित का हाथ पकड़कर तत्कालोचित मनुष्यों से घिरे हुए अपने स्थान पर लौट आये। आने पर राजा ने यथोचित विधि से भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को कालपुरुष का दान किया।

तब कालपुरुष का हृदय चीरकर उसमें से एक पापात्मा चाण्डाल प्रकट हुआ फिर थोड़ी देर के बाद निन्दा भी चाण्डाली का रूप धारण करके कालपुरुष के शरीर से निकली और ब्राह्मण के पास आ गयी। इस प्रकार चाण्डालों की वह जोड़ी आँखें लाल किये निकली और ब्राह्मण के शरीर में हठात प्रवेश करने लगी। ब्राह्मण मन ही मन गीता के नौवें अध्याय का जप करते थे और राजा चुपचाप यह सब कौतुक देखने लगे। ब्राह्मण के अन्तःकरण में भगवान गोविन्द शयन करते थे। वे उन्हीं का ध्यान करने लगे। ब्राह्मण ने जब गीता के नौवें अध्याय का जप करते हुए अपने आश्रयभूत भगवान का ध्यान किया, उस समय गीता के अक्षरों से प्रकट हुए विष्णुदूतों द्वारा पीड़ित होकर वे दोनों चाण्डाल भाग चले। उनका उद्योग निष्फल हो गया। इस प्रकार इस घटना को प्रत्यक्ष देखकर राजा के नेत्र आश्चर्य से चकित हो उठे। उन्होंने ब्राह्मण से पूछाः "विप्रवर ! इस भयंकर आपत्ति को आपने कैसे पार किया? आप किस मन्त्र का जप तथा किस देवता का स्मरण कर रहे थे? वह पुरुष तथा स्त्री कौन थी? वे दोनों कैसे उपस्थित हुए? फिर वे शान्त कैसे हो गये? यह सब मुझे बताइये।

ब्राह्मण ने कहाः राजन ! चाण्डाल का रूप धारण करके भयंकर पाप ही प्रकट हुआ था तथा वह स्त्री निन्दा की साक्षात मूर्ति थी। मैं इन दोनों को ऐसा ही समझता हूँ। उस समय मैं गीता के नवें अध्याय के मन्त्रों की माला जपता था। उसी का माहात्म्य है कि सारा संकट दूर हो गया। महीपते ! मैं नित्य ही गीता के नौवें अध्याय का जप करता हूँ। उसी के प्रभाव से प्रतिग्रहजनित आपत्तियों के पार हो सका हूँ।

यह सुनकर राजा ने उसी ब्राह्मण से गीता के नवम अध्याय का अभ्यास किया, फिर वे दोनों ही परम शान्ति (मोक्ष) को प्राप्त हो गये।

(यह कथा सुनकर ब्राह्मण ने बकरे को बन्धन से मुक्त कर दिया और गीता के नौवें अध्याय के अभ्यास से परम गति को प्राप्त किया।)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

(अनुक्रम)

नौवाँ अध्यायः राजविद्याराजगुह्ययोग

सातवें अध्याय के आरम्भ में भगवान ने विज्ञानसहित ज्ञान का वर्णन करने की प्रतिज्ञा की थी। उस अनुसार उस विषय का वर्णन करते हुए आखिर में ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञसहित भगवान को जानने की और अतंकाल में भगवान के चिंतन की बात कही है फिर आठवें अध्याय में विषय को समझने के लिए सात प्रश्न किये। उनमें से छः प्रश्नों के उत्तर तो भगवान श्रीकृष्ण ने संक्षिप्त में तीसरे और चौथे श्लोक में दिये, लेकिन सातवें प्रश्न के उत्तर में उन्होंने जिस उपदेश का आरंभ किया उसमें ही आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ। इस तरह सातवें अध्याय में शुरु किये गये विज्ञानसहित ज्ञान का सांगोपांग वर्णन नहीं हो पाने से उस विषय को बराबर समझाने के लिए भगवान इस नौवें अध्याय का आरम्भ करते हैं। सातवें अध्याय में वर्णन किये गये उपदेश से इसका प्रगाढ़ सम्बन्ध बताने के लिए भगवान पहले श्लोक में फिर से वही विज्ञानसहित ज्ञान का वर्णन करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

।। अथ नवमोऽध्यायः ।।

श्रीभगवानुवाच
इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।1।।

श्रीभगवान बोलेः तुझ दोष दृष्टिरहित भक्त के लिए इस परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञान को पुनः भली भाँति कहूँगा, जिसको जानकर तू दुःखरूप संसार से मुक्त हो जाएगा।(1)

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।2।।

यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओं का राजा, सब रहस्यों का राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त साधन करने में बड़ा सुगम और अविनाशी है।(2)

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।।3।।

हे परंतप ! इस उपर्युक्त धर्म में श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्र में भ्रमण करते रहते हैं।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।।4।।

मुझ निराकार परमात्मा से यह सब जगत जल से बर्फ से सदृश परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्प के आधार स्थित हैं, किन्तु वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।(4)

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः।।5।।

वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं हैं, किन्तु मेरी ईश्वरीय योगशक्ति को देख कि भूतों को धारण-पोषण करने वाला और भूतों को उत्पन्न करने वाला भी मेरा आत्मा वास्तव में भूतों में स्थित नहीं है।(5)

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।।6।।

जैसे आकाश से उत्पन्न सर्वत्र विचरने वाला महान वायु सदा आकाश में ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित हैं, ऐसा जान।(6)

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।7।।

हे अर्जुन ! कल्पों के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृति में लीन होते हैं और कल्पों के आदि में उनको मैं फिर रचता हूँ।(7)

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।।

अपनी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव के बल से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदाय को बार-बार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूँ।(8)

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु।।9।।

हे अर्जुन ! उन कर्मों में आसक्ति रहित और उदासीन के सदृश स्थित मुझ परमात्मा को वे कर्म नहीं बाँधते।(9)

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।10।।

हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से प्रकृति चराचर सहित सर्व जगत को रचती है और इस हेतु से ही यह संसारचक्र घूम रहा है।(10)

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।11।।

मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ सम्पूर्ण भूतों के महान ईश्वर को तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योगमाया से संसार के उद्धार के लिए मनुष्यरूप में विचरते हुए मुझ परमेश्वर को साधारण मनुष्य मानते हैं।(11)

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।।12।।

वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृति को ही धारण किये रहते हैं।(12)

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।13।।

परन्तु हे कुन्तीपुत्र ! दैवी प्रकृति के आश्रित महात्माजन मुझको सब भूतों का सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त होकर निरन्तर भजते हैं।(13)

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।

नमस्यन्तश्च मां भक्तया नित्ययुक्ता उपासते।।14।।

वे दृढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए और मुझको बार-बार प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यान में युक्त होकर अनन्य प्रेम से मेरी उपासना करते हैं।(14)

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्तवेन बहुधा विश्वतोमुखम्।।15।।

दूसरे ज्ञानयोगी मुझ निर्गुण-निराकार ब्रह्म का ज्ञानयज्ञ के द्वारा अभिन्नभाव से पूजन करते हुए भी मेरी उपासना करते हैं और दूसरे मनुष्य बहुत प्रकार से स्थित मुझ विराटस्वरूप परमेश्वर की पृथक भाव से उपासना करते हैं।(15)

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्धाहमहमौषधम्।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।।16।।

क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषधि मैं हूँ, मंत्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूँ।(16)

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च।।17।।

इस सम्पूर्ण जगत का धाता अर्थात् धारण करने वाला और कर्मों के फल को देने वाला, पिता माता, पितामह, जानने योग्य, पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ।(17)

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।।18।।

प्राप्त होने योग्य परम धाम, भरण-पोषण करने वाला, सबका स्वामी, शुभाशुभ का देखने वाला, सब का वासस्थान, शरण लेने योग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करने वाला, सबकी उत्पत्ति-प्रलय का हेतु, स्थिति का आधार, निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ।(18)

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।।19।।

मैं ही सूर्यरूप से तपता हूँ, वर्षा का आकर्षण करता हूँ और उसे बरसाता हूँ। हे अर्जुन ! मैं ही अमृत और मृत्यु हूँ और सत् असत् भी मैं ही हूँ।(19)

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।।20।।

तीनों वेदों में विधान किये हुए सकाम कर्मों को करने वाले, सोम रस को पीने वाले, पाप रहित पुरुष मुझको यज्ञों के द्वारा पूजकर स्वर्ग की प्राप्ति चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्यों के फलरूप स्वर्गलोक को प्राप्त होकर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते।।21।।

वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते है। इस प्रकार स्वर्ग के साधनरूप तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म का आश्रय लेने वाले और भोगों की कामना वाले पुरुष बार-बार आवागमन को प्राप्त होते हैं, अर्थात् पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में जाते हैं और पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आते हैं।(21)

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।22।।

जो अनन्य प्रेम भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों को योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।(22)

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।23।।

हे अर्जुन यद्यपि श्रद्धा से युक्त जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मुझको ही पूजते हैं, किन्तु उनका पूजन अविधिपूर्वक अर्थात् अज्ञानपूर्वक है।(23)

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्चयवन्ति ते।।24।।

क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी मैं ही हूँ, परन्तु वे मुझ परमेश्वर को तत्त्व से नहीं जानते, इसी से गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं।(25)

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।25।।

देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरा पूजन करने वाले भक्त मुझको प्राप्त होते हैं। इसलिए मेरे भक्तों का पुनर्जन्म नहीं होता।(25)

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्तया प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।26।।

जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूप से प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।(26)

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।27।।

हे अर्जुन ! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है वह सब मुझे अर्पण कर।(27)

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामपैष्यसि।।28।।

इस प्रकार जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान के अर्पण होते हैं – ऐसे सन्यासयोग से युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धन से मुक्त हो जाएगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा(28)

समोऽहं सर्वभूतेष न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।29।।

मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ। न कोई मेरा अप्रिय है ओर न प्रिय है परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।(29)

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।30।।

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त होकर मुझे भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसने भली भाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।(30)

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।31।।

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।(31)

मां हि पार्थ व्यापाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।32।।

हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि-चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परम गति को प्राप्त होते हैं।(32)

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।33।।

फिर इसमें तो कहना ही क्या है, जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भगवान मेरी शरण होकर परम गति को प्राप्त होते हैं। इसलिए तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।(33)

मन्मना भव मद् भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।34।।

मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजनकरने वाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्मा को मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।(34)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्य योगो नाम नवमोऽध्यायः।।9।।
इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के
श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में 'राजविद्याराजगुह्ययोग' नामक नौवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ।।9।।
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ